Vol.7 July 2013 No.1
Annual Subscription : Rs 100
Rs. 10/- per copy

ब्रह्मार्पण
BRAHMARPAN

वेदो ऽखिलो धर्ममूलम्

A Monthly publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

Brahmasha India Vedic Research Foundation
ब्रह्माशा इंडिया वैदिक रिसर्च फाउन्डेशन

आओ हम सब ज्योति जलाएँ

-राधेश्याम आर्य 'सुमन'

तिमिर भरा है गली-गली में, आओ हम सब ज्योति जलाएँ,
नफरत की परिपाटी फैली, आओ हम सब दूर भगाएँ।।

आपस में जो द्रोह भरा है,
मानव में लाएँ मानवता।
लाल-लाल आँखें ले करके
निधड़क घूम रही दानवता।
मार भगाएँ दानवता को, प्रफुल्लित हों सभी दिशाएँ,
नफरत की परिपाटी फैली, आओ हम सब दूर भगाएँ।।

जन-जन में उत्साह जगाकर,
शिक्षा का अब दीप जलाएँ।
गले लगाएँ नित दीनों को,
प्रेम रंग में सभी नहाएँ।
खुशियों का अम्बार गिराकर, आओ मिलके धूम मचाएँ।
नफरत की परिपाटी फैली, आओ हम सब दूर भगाएँ।।

जातिवाद की खाई गहरी,
सम्प्रदाय रखवाला है
घाटी में आतंकवाद है,
घूम रहा मतवाला है।
खोज-खोज कर मारें इनको, उग्रवाद को दूर हटाएँ,
नफरत की परिपाटी फैली, आओ हम सब दूर भगाएँ।।

डी-144, सैक्टर-5, यूपीएसआईडीसी कालोनी,
ओ. क्षेत्र जगदीशपुर सुल्तानपुर (उ.प्र.)

BRAHMASHA INDIA VEDIC RESEARCH FOUNDATION ACKNOWLEDGES WITH THANKS RECEIPT OF THE DONATION OF RS. 1100/- (ONE THOUSAND AND ONE HUNDRED) ONLY FROM SMT. MEENA THAKUR, C4B/PKT 13/218, JANAKPURI, NEW DELHI-110058.
DONATIONS TO THE FOUNDATION ARE ELIGIBLE FOR TAX EXEMPTION UNDER SECTION 80G OF THE I.T. ACT. 1961 VIDE NO. DIT (E) 1/3313/DELBE21670-2503210 DATED 25.03.2010

Brahmarpan July 2013 Vol. 7 No.1
आषाढ़-श्रावण 2070 वि.संवत्

ब्रह्मार्पण
BRAHMARPAN

A bilingual Publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

BRAHMASHA INDIA VEDIC RESEARCH FOUNDATION

C2A/58, Janakpuri,
New Delhi-110058
Tel :- 25525128, 9313749812
*email:*deeukhal@yahoo.co.uk
brahmasha@gmail.com

Sh. B.D. Ukhul
Secretary
Dr. B.B. Vidyalankar
President
Col.(Dr.) Dalmir Singh (Retd.)
V.President
Dr. Mahendra Gupta
V.President
Ms. Deepti Malhotra
Treasurer
Editorial Board
Dr. Bharat Bhushan Vidyalankar, Editor
Dr. Harish Chandra
Dr. Mahendra Gupta
Acharya Gyaneshwararya

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्याय क्षेत्र दिल्ली ही होगा।

Printed & Published by
B.D. Ukhul for Brahmasha India Vedic Research Foundation
Under D.C.P.
License No. F2 (B-39) Press/ 2007
R.N.I. Reg. No. DELBIL/ 2007/22062
Price : Rs. 10.00 per copy
Annual Subscription : Rs. 100.00

CONTENTS

1. आओ हम सब ज्योति जलाएँ
-राधेश्याम आर्य 'सुमन' 2
2. संपादकीय 4
3. सांख्य दर्शन 7
-डॉ. भारत भूषण विद्यालंकार
4. ऋषि दयानन्द और गवर्नर जनरल की कथित भेंट-सत्य क्या है? 8
-डॉ. भवानीलाल भारतीय
5. जीवन और जीवन के मोह 12
-प्रो. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'
6. पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक 18
7. "वाह री धर्मनिरपेक्षता" 19
-देवेन्द्रनाथ वर्मा
8. महाराणाप्रताप और छत्रपति शिवाजी
-मनुदेव अभय 25
9. Collision Of Egos 31
-Pt. Rajmani Tigunait
10. Subhas The Immortal 33
-Pattabhi Sitaramayya
11. हे अमृत पुत्र! 35
-डॉ. रामदेव प्रसाद सिंह 'देव'

संपादकीय

देश में फैलता माओवाद (नक्सलवाद)

स्वाधीनता से पूर्व बंगाल से जिस नक्सलवादी विचारधारा का उदय हुआ था आज उस विचारधारा का स्थान लूटपाट और निरपराध लोगों की हत्या ने ले लिया है। जहाँ पहले नक्सलियों के छोटे-मोटे समूह छुटपुट वारदात करके अपनी चिन्तन पद्धति का प्रसार करते थे। आज ये माओवादी समूह जंगलों में हजारों की संख्या में छिपकर बड़े पैमाने पर हिंसा को अंजाम देते हैं। कहने को उनका विरोध मुख्यरूप से पुलिस और सुरक्षाबलों से है परन्तु उसके साथ ही सामान्य जनता भी उनकी हिंसा का शिकार होती है।

हाल ही में 25 मई को जब कांग्रेस की परिवर्तन यात्रा का कारवाँ बस्तर जिले से दरभा की ओर लौट रहा था तभी माओवादियों ने जिनकी संख्या 500-700 रही होगी पहले लैंड माइन से कारवाँ के आगे चल रही कारों को उड़ा दिया और साथ ही अंधाधुध गोलीबारी से साठ-सत्तर लोगों को हताहत कर दिया। बाद में 30-31 लोगों के शव मिले। वस्तुतः उनके निशाने पर सलवा जुडूम के संस्थापक महेन्द्र कर्मा और राज्य कांग्रेस के अध्यक्ष नंदकुमार पटेल थे। इसके अतिरिक्त कांग्रेस के वयोवृद्ध नेता विद्याचरण शुक्ल पर भी उनकी नजर थी। उनका कहना था कि वे व्यापारियों के साथ मिलकर हमारे आन्दोलन को दबाते हैं। खेद है बाद में उनका निधन हो गया। यह चूँकि राजनीतिक पार्टी के कान्वॉय पर हमला था इसलिए इसकी व्यापक चर्चा होना स्वाभाविक था। इस प्रकार के आक्रमणों की घटनाएँ प्रायः होती रहती हैं। कुछ राजनीतिक दल इनका अपने स्वार्थ के लिए उपयोग करते हैं। कुछ समय पूर्व इन माओवादियों ने अर्धसैनिक बलों के लगभग सौ-सवासौ

जवानों के दस्ते पर घात लगाकर हमला कर दिया था जिसमें 70-80 जवान मारे गए थे। माओवादी उनके हथियार आदि लूटकर ले गए। ऐसी घटनाएँ आए दिन होती रहती हैं। वे सरकारी भवनों, विद्यालयों, पुलिस स्टेशनों, रेलवे स्टेशनों और कभी-कभी रेलगाड़ियों तक पर आक्रमण करके उन्हें नुकसान पहुँचाते हैं।

हाल की घटना में उनके नेताओं ने इस बात पर दुःख व्यक्त किया कि हमारी इस कार्रवाई में कुछ निरपराध लोगों की भी हत्या हो गई है, इसका हमें दुःख है। परन्तु वे प्रायः निरपराध लोगों की हत्या करते और लूटपाट करते हैं।

इस विषय में हमारी सरकार सब साधन होने के बावजूद इन्हें नियंत्रित नहीं कर पर रही है। धीरे-धीरे इनके क्षेत्र का विस्तार होता जा रहा है। ये तिरुपति से पशुपति (नेपाल) तक फैले हैं। इधर असम से आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, झाड़खंड, बंगाल, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, बिहार तथा उड़ीसा तक इनका साम्राज्य फैला है। ये गुरिल्ला युद्ध में सिद्धस्त हैं और सुरक्षाबलों व पुलिस पर घात लगा कर हमला करते हैं और फिर तितर-बितर हो जाते हैं। इनकी सेना में पुरुषों के अलावा स्त्रियाँ और नाबालिक लड़के भी शामिल हैं। अब ये शहरों पर भी हमलों की योजनाएँ बना रहे हैं।

आज हमारे पास चालक रहित टोही विमान हैं जिनकी सहायता से उनके जंगलों में छिपे ठिकानों की खोज करके आकस्मिक आक्रमणों से उन्हें नियंत्रित किया जा सकता है। सरकार में इच्छाशक्ति और समुचित योजनाओं का अभाव है इसलिए माओवादी पूरे भारत में छाए जा रहे हैं। सरकार को दृढ़ संकल्प के साथ माओवादियों के गढ़ों को समाप्त करना होगा और जन सामान्य के हितों को सुरक्षित करना होगा

संपादक

सांख्य दर्शन

(अध्याय–1, सूत्र–68)

–डॉ. भारत भूषण विद्यालंकार

अब सूत्रकार अगले सूत्र में बताते हैं कि मूल प्रकृति और चेतन का ज्ञान किस प्रमाण से होता है। सूत्र है–

सामान्यतोदृष्टादुभयसिद्धिः ।।68।।

अर्थ– (सामान्यतोदृष्टात्) सामान्यतोदृष्ट (अनुमान प्रमाण) से (उभयसिद्धिः) (चेतन और अचेतन) दोनों की सिद्धि होती है। **भावार्थ–** सामान्यतोदृष्ट अनुमान से अचेतन (प्रकृति) और चेतन (पुरुष) दोनों की सिद्धि होती है। यह अनुमान तीन प्रकार का है– 1. पूर्ववत्, 2. शेषवत् और 3. सामान्यतोदृष्ट। इनमें **पूर्ववत्** अनुमान में कारण से कार्य का अनुमान होता है, जैसे–आकाश में घने बादलों के घिर आने से अनुमान होता है कि वर्षा होगी। **शेषवत्** अनुमान में कार्य से कारण का अनुमान होता है, जैसे– नदी में बाढ़, कूड़ा–करकट, गंदा पानी देखने से ऊपर पहाड़ों आदि में वर्षा होने का अनुमान होता है। तीसरे **सामान्यतोदृष्ट** अनुमान से प्रत्यक्ष प्रमाण में पूर्वदृष्ट नियम तय कर लेते हैं, जैसे– कुल्हाड़ी से लकड़ी काटी जाती है। यहाँ 'काटना' कार्य और 'कुल्हाड़ी' काटने का साधन है। कुल्हाड़ी काट सकती है, 'काटना' बिना कुल्हाड़ी के संभव नहीं है। इनके नियत साहचर्य को देखकर एक सामान्य नियम का निर्धारण किया जाता जाता है कि प्रत्येक कार्य का कोई साधन (कारण) अवश्य होता है अर्थात् साधन के बिना कोई कार्य नहीं हो सकता। इसी प्रकार किसी दृश्य पदार्थ से उसे देखने की साधन चक्षु इन्द्रिय का अनुमान होता है, यद्यपि हमने कभी चक्षु को प्रत्यक्ष नहीं देखा है। परंतु चूँकि बिना साधन के कोई कार्य नहीं हो सकता अतः पूर्व नियम के अनुसार हम चक्षुइंद्रिय (आँख) का अनुमान करते हैं। ऐसे ही

हम देखते हैं कि कोई कार्य अपने सजातीय कारण से ही उत्पन्न होता है, जैसे कुंडल सोने से और घड़ा मिट्टी से बनता है। इन दृष्ट पदार्थों पर जो नियम लागू होता है, वही अदृष्ट पदार्थों पर भी लागू होता है। संसार का हर पदार्थ त्रिगुणात्मक है। एक पदार्थ किसी के लिए दुःखकर होता है तो वही दूसरे के लिए सुखकर हो सकता है। यही सत्व, रज, तम का स्वरूप है। यद्यपि हमने जगत् को उत्पन्न होते नहीं देखा है परन्तु पूर्वोक्त सामान्य नियम के अनुसार हम त्रिगुणात्मक जगत् के किसी अतीन्द्रिय मूल उपादान का अनुमान कर लेते हैं। इस प्रकार सामान्यतोदृष्ट अनुमान से जगत् के मूलकारण प्रकृति की सिद्धि होती है।

लोक में हम देखते हैं कि सांसारिक पदार्थ गृह, शय्या, वस्त्रादि सभी साधनों का स्वयं के लिए कोई उपयोग नहीं होता, इनका उपयोग कोई दूसरा व्यक्ति ही करता है। अतः कह सकते हैं कि सभी परिणामी पदार्थ परार्थ (दूसरे के लिए) हैं। यह दूसरा व्यक्ति कोई अचेतन नहीं हो सकता। इस प्रकार सामान्यतोदृष्ट अनुमान से अतीन्द्रिय चेतन तत्व सिद्ध होता है।

सी–2ए, 16/90 जनकपुरी,
नई दिल्ली–10058

विचार–वीथि

गुणों से मनुष्य साधु होता है और अवगुणों से असाधु होता है। सद्गुणों को ग्रहण और दुर्गुणों को छोड़ो। जो इस सच को जानकार राग और द्वेष में सम भाव रखता है, वह पूज्य है।

भगवान महावीर

सज्जन लोग चाहे दूर भी रहें पर उनके गुण उनकी ख्याति के लिए स्वयं दूत का कार्य करते हैं। फूल की गंध सूँघकर भँवरा खुद उसके पास चला जाता है।

पंचतंत्र

गुणों से ही मनुष्य महान होता है, ऊँचे आसन पर बैठने से नहीं। महल के ऊँचे शिखर पर बैठने से भी कौआ गरुड़ नहीं बन सकता।

चाणक्य

ऋषि दयानन्द और गवर्नर जनरल की कथित भेंट–सत्य क्या है?

–डॉ. भवानीलाल भारतीय

पं. लेखराम द्वारा लिखित स्वामी दयानन्द का बृहत् उर्दू जीवन चरित 1897 में प्रकाशित हुआ। उसी वर्ष कलकत्ता से देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय लिखित दयानन्द चरित बंगला भाषा में भी छपा। इसके पश्चात् देवन्द्र बाबू जीवनचरित के तथ्यों की गहन गम्भीर गवेषणा करने के लिए देश में भ्रमण करते रहे, दयानन्द के सम्पर्क में आये लोगों से जीवनवृत्त की जानकारी लेते रहे तथा सभी साधन जुटाकर वे काशी में रहकर महाराज की विशद–प्रामाणिक जीवनी लिखने बैठे। यह सन् 1915–16 की बात है। अभी वे ग्रन्थ की विशद भूमिका तथा दण्डी विरजानन्द की पाठशाला में अध्ययन तक का ही वृत्तान्त लिख पाये थे कि 1917 में पक्षाघात से उनका निधन हो गया। एक महान कार्य अधूरा रह गया।

देवेन्द्र बाबू की आर्यसमाज के क्षेत्र में बहुत कम जान–पहचान थी। मेरठ के वकील और आर्य विद्वान पं. घासीराम से उनकी मैत्री और घनिष्ठता थी। पं. घासीराम को बंगला का अच्छा ज्ञान था। देवेन्द्रबाबू के निधन के पश्चात् वे काशी गये और देवेन्द्रनाथ द्वारा संचित सामग्री ले आये। पुनः जहाँ देवेन्द्रनाथ ने इसे छोड़ा था वहाँ से जीवन की समाप्ति तक ग्रन्थ उन्होंने संचित सामग्री के आधार पर लिख डाला। देवन्द्र के लेखन तथा घासीराम के संकलन–सम्पादन में मौलिक अन्तर यह है कि देवेन्द्र बाबू की शैली में एक मँजे हुए साहित्यकार का सौष्ठव है वहाँ घासीराम ने उपलब्ध तथ्यों का विवरण कालक्रम से दिया जो सराहने योग्य है।

पं. घासीराम ने देवेन्द्र बाबू की कृति को पूरा तो किया ही, तब तक प्रकाशित दो जीवनचरितों (पं. लेखराम कृत तथा स्वामी सत्यानन्द लिखित श्रीदयानन्द प्रकाश 1918 में प्रकाशित) को भी इस कार्य में अपने समक्ष रखा। इन दो में जो कुछ भिन्न बातें उन्हें दिखाई दीं, उन पर पाद टिप्पणियों में अपना मत प्रकट किया।

स्वामी सत्यानन्द कृत 'दयानन्द प्रकाश' एक भक्तिभावपूर्ण गद्य काव्य है। कई ऐसी घटनाएँ इसमें समाविष्ट हैं जो चमत्कारपूर्ण

तथा मात्र कल्पनाप्रसूत जान पड़ती हैं। इनका स्रोत क्या है, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। उदाहरणार्थ, दयानन्द प्रकाश में लिखा है कि स्वामी दयानन्द एक बार भारत के गवर्नर जनरल (कौन गवर्नर, नाम नहीं लिखा, कहाँ मिले? स्थान का नाम नहीं लिखा) से मिले। वार्तालाप के प्रसंग में अंग्रेज शासक ने स्वामी जी के समक्ष प्रस्ताव रखा कि यदि आप चाहें तो आपकी सुरक्षा के लिए सरकार सिपाही नियुक्त कर दे। स्वामीजी ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए कहा कि वे तो ईश्वर की सहायता और रक्षा के भरोसे ही निश्चिन्त होकर सत्य धर्म का प्रचार करते हैं। उन्हें किसी राजकीय सहायता की जरूरत नहीं है।

स्वामी सत्यानन्द के उक्त विवरण पर पं. घासीराम की यह टिप्पणी पाठक सावधानी से पढ़ें- "स्वामी जी का गवर्नर जनरल से मिलना और उनका स्वामी जी की विपदा की वार्ता सुनकर स्वामी जी की रक्षार्थ सैनिक नियत करने को कहना हमारे विश्वास की सीमा का उल्लंघन कर जाता है। यह गवर्नर जनरल कौन थे और स्वामी जी से कब और कहाँ मिले थे? स्वामी जी को उनसे मिलने का अवसर कैसे मिला था? आदि प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं है।

ध्यान रहे कि दयानन्द प्रकाश का प्रथम बार प्रकाशन 1918 में हुआ था और इससे पहले छपे लेखराम तथा देवेन्द्रनाथ के जीवन चरितों में इस घटना का कोई उल्लेख नहीं है) 1925 में जब मथुरा में दयानंद शताब्दी मनाई गई तो उस समय दयानन्द का प्रत्यक्ष दर्शन करने वाले लोगों का एक सम्मेलन हुआ। उसमें उपस्थित अम्बाला के दीवान अलखधारी जी ने 1872-73 में स्वामी दयानन्द की भारत के वायसराय और गवर्नर जनरल नार्थब्रुक से हुई एक भेंट का ब्यौरा देते हुए कहा कि यह वृत्तान्त सरकारी अभिलेखागार में सुरक्षित है। 1963 की मेरठ कालेज की पत्रिका में दीवान अलखदारी ने एक लेख 'दयानन्द-पोलिटिकल जीनियस' शीर्षक से लिखा तथा इतना विशेष लिखा कि दयानन्द के निर्भीक कथन से विक्षुब्ध गवर्नर जनरल ने संन्यासी दयानन्द को बागी फकीर (Rebel Fakir) करार दिया, इसकी गुप्त रिपोर्ट लंदन के इण्डिया आफिस (भारतमंत्री Secretary for State) को भेजी तथा गुप्तचर

विभाग को निर्देश दिया कि दयानन्द पर सख्त निगरानी रखी जाये।

अध्ययन तथा शोध से दूर का वास्ता न रखने वाले लेखकों, वक्ताओं और नेताओं ने इस प्रसंग को खूब उछाला। जब कि सच्चाई यह है स्वामीजी के किसी प्रामाणिक जीवनचरित में इसका उल्लेख नहीं है। इस घटना की असत्यता तथा कल्पित होने में निम्न प्रमाण हैं-

1. स्वामी दयानन्द जब 1972-73 में कलकत्ता में थे उस समय उनके वहाँ की प्रवृत्तियों में भाग लेने के विस्तृत विवरण वहाँ के बंगला तथा अंग्रेजी पत्रों में विस्तार से छपे हैं। इस अवधि में यदि स्वामी जी की गवर्नर जनरल से वार्ता हुई होती तो वह प्रेस तथा पब्लिक के नोटिस में अवश्य आती। गवर्नर जनरल कोई मामूली हस्ती नहीं था कि उससे भेंट सूचनातंत्र को अविदित रहती।

2. कालान्तर में जीवनीकारों ने जब इस पर गम्भीरता से विचार किया तो इसके काल्पनिक होने के अनेक प्रमाण मिले, जिन्हें विभिन्न लेखकों ने प्रस्तुत किया है-

इस कथित भेंट के समर्थकों ने लिखा है कि स्वामी जी तथा वायसराय के वार्तालाप में बिचौलिये (Interpreter) का काम कलकत्ता के विशप राबर्ट मिलमैन ने किया था। सच्चाई यह है कि मिलमैन को संस्कृत का ज्ञान नहीं था अतः उसके द्वारा बिचौलिए का काम करना संभव ही नहीं था। स्वामी दयानन्द तब तक संस्कृत से भिन्न किसी अन्य भाषा का प्रयोग नहीं करते थे। राबर्ट मिलमैन का पत्र व्यवहार तथा संस्मरण प्रकाशित हुए हैं, इनमें स्वामी का कोई उल्लेख नहीं है। प्रो. श्रीराम शर्मा द्वारा लिखित अप्रकाशित ग्रन्थ-स्वामी दयानन्द एण्ड हिज वर्क (लेखक के निजी संग्रह में) कुछ वर्ष पूर्व पटियाला के पंजाबी विश्वविद्यालय में इतिहास के प्राध्यापक (तब के डी. ए.वी कालेज मलौट में प्रवक्ता थे) ने अपने शोधग्रन्थ 'दि आर्यसमाज एण्ड दि ब्रिटिश राज' में अन्य अनेक प्रमाण देकर इस प्रवाद का खण्डन किया है।

जब दीवान अलखधारी से उनके कथन के प्रमाण माँगे गये तो उन्होंने उक्त डिस्पैच के भारत सरकार के अभिलेखागार में होने की बात बताई और कहा कि उन्हें यह सूचना 1921 में भारत

सरकार के आर्काइव्ज विभाग द्वारा मिली। यह भी वास्तविकता की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। कभी तो वे इंग्लैण्ड में होने की बात करते हैं और कभी भारत में। मेरे मित्र प्रो. जयदेव आर्य ने 16 फरवरी 1967 को उन्हें पत्र लिखकर इस मामले की सफाई चाही तो उत्तर में अलखधारी ने लिखा कि वायसराय से मुलाकात की बात पं. लेखराम रचित उर्दू जीवनचरित में है। सच्चाई बिल्कुल विपरीत है। पं. लेखराम रचित जीवनरचित में यह कथा नहीं है।

इस प्रसंग में मैंने अपने मित्र पं. ईश्वरनाथ शिवपुरी से निवेदन किया था कि वे जब इंग्लैण्ड जायें तो इस प्रसंग की जाँच करें। 1974 में जब प्रो. शिवपुरी ब्रिटेन गये तो उन्होंने तत्कालीन पुरातत्व सामग्री-वायसराय लार्ड नार्थब्रुक द्वारा ड्यूक ऑफ आरगाइल को भेजे पत्र, सावधानी से देखे तो उन्हें दयानन्द-वायसराय भेंट का कोई विवरण नहीं मिला। दयानन्द के कलकत्ता प्रवास की एक डायरी हेमचन्द्र चक्रवर्ती लिखित मिलती है। उसमें तिथिक्रम से कलकत्ता प्रवास के समय स्वामी दयानन्द की दिनचर्या का विवरण दिया गया है। यह डायरी पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने 'ऋषि दयानन्द के पत्रव्यवहार का परिशिष्ट' ग्रन्थ (1958 में रामलाल कपूर ट्रस्ट से प्रकाशित) में दी हैं। हेमचन्द्र चक्रवर्ती इस प्रवास में स्वामीजी के निकट रहे थे। यदि कोई ऐसी घटना घटती तो वे उसका उल्लेख अवश्य करते। वस्तुतः यह सारी कल्पना दीवान अलखधारी के मस्तिष्क की उपज है।

जब स्वामीजी मुम्बई में थे, उस समय वायसराय का इस नगर में आगमन हुआ था। केशवचन्द्र सेन ने आर्यसमाज के अधिकारियों से तब निवेदन किया कि वे स्वामीजी तथा वायसराय की भेंट की व्यवस्था करें। जब स्थानीय आर्यों ने स्वामीजी से इस विषय में परामर्श किया तो महाराज का कथन था कि मैं तो वायसराय से मिलने जाऊँगा नहीं और न वे ही मुझसे मिलने के लिए आतुर हैं। फलतः यह प्रसंग यहीं पर समाप्त हो गया। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि स्वामी दयानन्द और वायसराय (लार्डनार्थब्रुक) की कथित भेंट दीवान अलखधारी के उर्वर मस्तिष्क से उपजी कल्पनामात्र है।

315, शंकर कालोनी, श्री गंगानगर

जीवन और जीवन के मोह

-प्रो. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

स्वाध्याय करते हुए ला. लाजपतराय जी की कुछ पंक्तियों को पढ़ा तो मैं विचारों में डूब गया। लालाजी ने अपने पिता मुंशी राधाकृष्ण जी के जीवन की एक घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है कि एक बार उनके निवास के आंगन में पड़ी रेत की ढेरी पर से एक सर्प निकल गया। रेत पर सर्प के निकलने के निशान पड़ गए। मुंशी राधाकृष्ण कई दिन तक सर्प के बारे में लाला जी से पूछते रहे। क्या सर्प की हत्या कर दी गई अथवा नहीं। वह इस विषय में बड़े चिन्तातुर स्वर में बातचीत करते थे। तब मुंशी जी अस्सी के निकट पहुँच चुके थे।

इस पर लालाजी ने लिखा है, "उस समय मुझे प्रथम बार इस सत्य का पूर्ण ज्ञान हुआ कि मनुष्य की जितनी अधिक आयु होती वह मनुष्य मृत्यु का आलिंगन करने को उतना ही कम इच्छुक होता है।"

काया व माया का मोह बड़ा दुःखदायी है। यह अज्ञानमूलक है। हुतात्माओं व वीर पुरुषों का जीवन अपवाद ही होता है। मनुष्य ज्ञान से, विवेक से, प्रभु-भक्ति से मृत्यु के भय से मुक्त हो सकता है। लाला लाजपतराय जी की ये पंक्तियाँ पढ़कर आर्यसमाज के अनेक विद्वानों व महापुरुषों के (जिन्हें मैंने निकट से देखा) जीवन की अन्तिम वेला की घटनाएँ याद आ गईं। मेरे मन में आया कि इतिहास की सुरक्षा के लिए तथा अध्यात्म-चर्चा के लिए ऐसी घटनाओं को लेखबद्ध कर देना उपयोगी रहेगा। लौह पुरुष स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के जीवन के अन्तिम दिनों में मैं कई बार उनके दर्शनार्थ गया। मैंने उनको अपने रोग अथवा शरीर के छूटने के बारे में कभी चिन्तित न पाया। न मरने का भय था और न शरीर की चिन्ता। मैंने उनके जीवन-चरित में इस विषय की उनकी कई घटनाएँ दी हैं जो बहुत शिक्षाप्रद व प्रेरणाप्रद हैं। दिल्ली के श्रीयुत पं. हरिदेव जी करौलबाग समाज वाले दिल्ली में श्री महाराज का पता करने गये। स्वामीजी अपने स्वभावानुसार

धर्म-चर्चा ही करते थे। हरिदेव जी से कहा, "कुछ पूछ लें।" पं. हरिदेव जी ने कहा, "हदीसों में आता है ज्यों-ज्यों व्यक्ति बूढ़ा होता है, काया व माया का मोह या जीने की इच्छा बढ़ती जाती है। क्या पैगम्बर मुहम्मद जी का यह विचार ठीक है?" स्वामीजी ने कहा, "अपने को तो न ही पहले कभी काया-माया का मोह रहा और न अब है। पैगम्बर साहब की बात तो वही जानें।" श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी व स्वामी सत्यानन्द जी (रामनाम वाले) दीनानगर स्वामीजी के स्वास्थ्य का पता करने गये। दोनों एक साथ तो नहीं गये परन्तु एक बात मानवीय स्वभाव से दोनों ने कही, "स्वामीजी आप शीघ्र स्वस्थ हो जायेंगे।" दोनों को पूज्य स्वामीजी ने कहा, स्वास्थ्य नहीं सुधरेगा तो क्या? एक दिन देह को त्यागना तो है ही। एक बार श्री पं. प्रकाशवीर जी ने अपने अनूठे ढंग से कहा, "स्वामीजी! स्वास्थ्य कैसा है?" वे बोले खेल के मैदान में खिलाड़ी बनकर उतरे थे। जी भर कर खेले। अब रैफरी ने आऊट कर दिया है। अब तो चलना है। श्री प्रकाशवीर जी ने कहा, 'नहीं! स्वामीजी आप तो कभी आऊट नहीं हुए। अब भी ठीक हो जायेंगे।' इस पर स्वामीजी ने फिर कहा, नहीं! अब तो रैफरी ने निर्णय दे दिया है। यह था महाराज का उत्तर। चेहरे पर चिन्ता की कोई रेखा थी ही नहीं।

महात्मा आनन्द स्वामीजी महाराज ने अन्तिम दिनों इस सेवक को याद किया तो उनका पता लगने पर जालंधर मिलने गया। भक्तों से घिरे महात्मा जी ने एक प्रश्न के उत्तर में लेखक को कहा, "अब यह पैर, यह टाँग-ये चोला बहुत घिस लिया। यह कहता है अब मेरी जान छोड़। अब किसी नई माता की कोख से जन्म लेकर ऋषि के मिशन का काम करेंगे।" यह है उस वार्तालाप का सार। मैंने देखा कि काया व माया का मोह वे जीत चुके थे। कुछ ही दिनों के पश्चात् वे चल बसे।

श्री आचार्य उदयवीर जी शास्त्री ने कैप्टन देवरत्न जी के निवास पर मुझे एक साहित्यिक कार्य करने को कहा। मैंने कहा, "यह कार्य अवश्य करूँगा। कुछ वर्ष प्रतीक्षा करें" वे

बोले, "मेरे जीवन-काल में इसे कीजिये। तब तक मैं बैठा तो नहीं रहूँगा।"

मैंने कहा, "आपकी स्मृति ठीक है। नयनों की ज्योति बनी हुई है। अभी चलने-फिरने में सक्षम हैं, अतः आप 120 वर्ष तक जियेंगे। यह कार्य हो जायेगा।"

आचार्य प्रवर बोले, "जिज्ञासु जी! मुझे यह आशीर्वाद मत दें। मुझे इतना दीर्घ जीवन नहीं चाहिये।

श्री स्वामी सत्यप्रकाश जी ने मुम्बई में स्वामी संकल्पानन्द जी से आयु विषयक चर्चा में कहा, जीवेम शरदः शतम् के साथ 'अदीनाः स्याम' भी वेद में आता है। उस जीवन का क्या लाभ जब अदीनता ही न हो?

अपने संन्यास-ग्रहण के थोड़ा समय बाद मलोट के रेलवे स्टेशन पर श्री डॉ. अशोक आर्य व मुझसे बात करते हुए स्वामी जी ने कहा, "यदि मेरी अन्तिम वेला आपके पास आ जाय तो मुझे मरने देना। ऑक्सीजन आदि चढ़ाकर मृत्यु को टालना नहीं। उनका यह कथन रह-रहकर मुझे याद आता है। रोगियों की, वृद्धों की सेवा हो-उपचार हो, यह सब ठीक है परन्तु मनुष्य को शरीर के घिसने पर काया का मोह नहीं होना चाहिये।

श्रद्धेय पं. युधिष्ठिर जी मीमांसक के अन्तिम दिनों मैं उनका पता करने गया। आपने कहा, "मेरा एक काम कीजिये।" मैंने कहा, "क्या?" आपने कहा, 'रसाला एक आर्य' मुझे एक बार दिखा दो।' मैंने कहा 40-50 वर्ष से इसकी खोज में लगा हूँ। अभी तक मिला नहीं। जब मिलेगा तो सबसे पहले आप ही को दिखाऊँगा। इस पर पूज्य पण्डित जी ने कहा, "अब फिर क्या देख पाऊँगा। शरीर तो छूटने वाला है।"

मुझे भी दिख रहा था कि वे अब कुछ सप्ताह तक ही जीवित रहेंगे फिर भी मानवीय स्वभाव से कहा, 'नहीं! गुरुजी! अभी आप चिरंजीवी होंगे। आपको अवश्य यह पुस्तक खोज कर दिखाऊँगा।'

पूज्य पण्डित जी ने फिर कहा, मैं तो जा रहा हूँ। आपको यह कार्य करना है। इसका हिन्दी अनुवाद छप जाय। मैंने अनुभव

किया कि इन्हें भी मौत को आलिंगन करते हुए कोई डर नहीं सता रहा था। काया का कतई मोह नहीं। प्रसंगवश यहाँ बता दूँ कि उनके निधन के शीघ्र बाद चमत्कारिक ढंग से 'रसाला एक आर्य' को मैंने मुरादाबाद में खोज निकाला और पूज्य मीमांसक जी को ही यह पुस्तक समर्पित की गई। व्यक्ति के भक्ति-भजन व जप-तप तथा आस्तिक्य भाव की कसौटी ही यही है कि वह सत्य पर अडिग हो तथा काया व माया के मोह पर विजय पाये। स्वामी श्रद्धानंद जी महाराज के जीवन में तो पग-पग पर हमें ऐसी घटनाएँ मिलती हैं जो यह सिद्ध करती है कि वे मृत्युंजय थे। जीवन की अन्तिम वेला में सनातन धर्म के नेता महाराज दरभंगा उनका हालचाल पूछने आये तो आपने दृढ़ता से पूरे आत्मविश्वास से कहा कि अब तो चोला बदल कर मुझे अपना अधूरा कार्य करना है। खेद है कि अब मृत्यु पर विजय पाने के लिये नहीं, जीने के मोह से मौत से डर कर लोग मृत्युंजय मंत्र का पाठ करते हैं। मैंने एक बार विद्यार्थी जीवन में पं. परमानंद जी झाँसी का एक लेख एक उर्दू दैनिक में पढ़ा था। उसमें आपने लिखा था कि मैं काल-कोठरी में बन्द था। भाई परमानन्द जी की कोठरी मेरी कोठरी के सामने थी। हम एक दूसरे को नित्य देखा करते थे। भाई जी को फाँसी दण्ड सुनाया गया। सब बन्दियों को इस निर्णय का पता चल गया। पण्डित परमानन्द जी ने लिखा कि मैंने सोचा आज देखेंगे कि मृत्युदण्ड का निर्णय सुनकर भाई जी का चेहरा कैसा है। वे रात चैन से सोये। प्रातः जागे तो मुखड़े पर वही पहले वाला तेज व पहले वाली शान्ति थी। पं. परमानन्द जी ने अपनी कोठरी में से आवाज देकर कुछ पूछा तो सांख्य दर्शन के सूत्रों की व्याख्या करते हुए मृत्युंजय भाई परमानंद ने वीर परमानन्द को जीवन व मृत्यु पर एक मार्मिक उपदेश दिया। मैंने किसी भी आर्य पुरुष को कभी यह चर्चा करते हुए नहीं सुना कि मुनिवर भाई परमानन्द अपने व्याख्यान से पूर्व वेद की प्रसिद्ध ऋचा 'वेदाहमेतम्' का बड़ी मस्ती से पाठ किया करते थे। यही उनका जीवन-दर्शन था। इसे उन्होंने अपने जीवन में उतारकर दिखाया।

पूज्यपाद पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने तो काया व माया के मोह को ऐसे जीत लिया था कि उसका स्मरण करके सब आर्यों की छाती अभिमान से फूलनी चाहिये। आपका निधन 1968 में हुआ। 1954-55 के आसपास आपने अपना प्रसिद्ध मुक्तक रचाः-

'हो गया कोहना लिबास तार-तार।

अर्थात् अब तो यह चोला बहुत जीर्ण-शीर्ण हो गया है। अब रफूगर (परमेश्वर) भी इसको क्या ठीक कर सकता है। अब तो नया चोला धारण करने की मेरी तैयारी है।

आपकी आँख का इलाज हो रहा था। महाशय कृष्ण आदि नेता पता करने गये। हालचाल पूछा तो स्वरचित यह पद्य तत्काल रचा व सुनायाः-

अब तो बीनाई बढ़ गई इतनी कि मौत साफ नजर आती है।

अर्थात् अब तो मुझे बहुत स्पष्ट दिखाई देने लग गया है इतना कि मौत भी साफ-साफ दिखाई देती है।

मैंने शोलापुर से पत्र लिखकर कुशल-क्षेम पूछा तो पत्र में लिखा-

तूल उमरी का मिरे बस राज है इतना-सा।
सुस्त-रफ्तार हूँ लग जाती है हर काम में देर।

अर्थात् मेरे दीर्घ जीवन का बस यही रहस्य है कि धीरे-धीरे चलता हूँ मैं। इसी कारण मृत्यु तक भी शीघ्र नहीं पहुँच रहा हूँ। गंगा-ज्ञान सागर के चौथे भाग में उनके विस्तृत खोजपूर्ण जीवन-चरित में सविस्तार मृत्यु से आलिंगन करने की उनकी घटना दी है। मृत्यु पर दार्शनिक चर्चा करते-करते अपने ज्येष्ठ पुत्र की गोदी में आपने अपना सिर धर दिया। बाप-बेटा आमने-सामने ही तो बैठे थे। देखा तो देह का त्याग करके वे तो सुखपूर्वक विदा हो लिये।

कुछ लोगों ने स्वामी सर्वानन्द जी महाराज के दीर्घ जीवन के लिये महामृत्युंजय मंत्र का यज्ञ रख दिया। आर्यसमाज के लोग चुप्पी साधे रहे। पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज ने रोगियों की, दुखियों की व निर्धनों की अपूर्व सेवा की। एक इतिहास बना डाला। सत्तर वर्ष तक सेवा की। अब उन्हें सुनाई नहीं

देता था। हाथों में कम्पन था। सारा जीवन परोपकार में लगे रहे। अब क्या करना शेष था। मृत्युंजय मंत्र का जप किसलिये? पूज्य नारायण स्वामीजी, स्वामी स्वतंत्रानन्द जी आदि के लिये किसने ऐसा यज्ञ रचाया? यह मंत्र तो काया का मोह जीतने के लिये है। मौत पर विजय पाने का यह मंत्र दूसरों के पाठ का विषय नहीं है। इसका पाठ तो व्यक्ति को स्वयं ही करना होता है। यह आचरण के लिये है, तोता-रटन के लिये नहीं।

मैं गुजरात के वयोवृद्ध समाजसेवी श्रीशिवगुण बापूजी का पता करने गया। वह तब 63-64 वर्ष के हो चुके थे। उन्हें ऊँचा सुनता था। दिखता भी बहुत कम था। मैंने कहा, "बापू जी शतक पूरा करना" वे बोले, " इसका लाभ क्या? मैं किसी के काम तो आ नहीं रहा। अब तो प्रभु से नया चोला पाना है।" मैंने कहा, आपका मार्गदर्शन व आशीर्वाद सबको मिल रहा है। सेवा व देखभाल में कमी नहीं। इसलिये शतक पूरा करें। उनका भी कथन यही था कि परमात्मा की वाणी स्वावलम्बी जीवन को ही जीवन मानती है।

मेरा आर्यमात्र से यह निवेदन है कि पुराने आर्यों का स्मरण करके काया का मोह जीतने का अभ्यास करें। पुराने आर्य गाया करते थे:-

परिव्राजकाचार्य स्वामी दयानन्द पधारा है परलोक डंके बजाता।

नगर कीर्तनों में मेरे बाल्यकाल में झूम-झूम कर गाते थे:-

यह न पूछो कि मर कर किधर जायेंगे।
वह जिधर भेज देगा उधर जायेंगे।।
खिदमते खल्क में जो कि मर जायेंगे।
नाम दुनियाँ में अपना ले कर जायेंगे।।

वेद सदन, अबोहर

महामहोपाध्याय पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक
(28 जून को पुण्यतिथि पर)

महामहोपाध्याय पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक जी का जन्म 22 सितम्बर, सन् 1909 ई. को विरकच्यावास (विरञ्च्यावा), अजमेर (राजस्थान) में हुआ था। 'आश्रम' हरदुआगंज, अलीगढ़ आदि स्थानों पर पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु आदि विद्वानों के सान्निध्य से सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय का गम्भीर अध्ययन किया। विरजानन्द आश्रम (लाहौर, वाराणसी, बहालगढ़) महर्षि दयानन्द स्मारक महाविद्यालय (टंकारा), पाणिनीय संस्कृत सान्ध्य महाविद्यालय (भुवनेश्वर, उड़ीसा) तथा अन्य अनेक स्थलों पर भी स्वतंत्र रूप से अध्यापन कार्य एवं रामलाल कपूर ट्रस्ट के प्रधान पद पर रहते हुए आजीवन कुशल सञ्चालन किया।

आपने अनेक ग्रन्थ लिखे जिनमें संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास (दो भाग), वैदिक-स्वरमीमांसा, वैदिक-छन्दोमीमांसा, वैदिक-सिद्धान्तमीमांसा, श्रौत-यज्ञ-मीमांसा आदि अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का लेखन कार्य किया।

आपने निरुक्त-समुच्चयः, भागवृत्ति-संकलनम्, दशपाद्युणादिवृत्तिः (दो भाग) शिक्षा-सूत्राणि, क्षीरतरंगिणी, दैवम् (पुरुषकार-वार्त्तिकोपेतम्), काशकृत्स्न-धातुव्याख्यानम्, मध्यन्दिन-पदपाठः, महाभाष्यम् (हिन्दी व्याख्या दो अध्याय पर्यन्त), ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन (चार भाग) आदि अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का सम्पादन किया।

सन् 1977 ई. में भारत के राष्ट्रपति द्वारा 'राष्ट्रीय पण्डित', आर्यसमाज सान्ताक्रुज (मुम्बई) द्वारा सन् 1975 ई. में 75 सहस्र रुपये से सम्मानित, सन् 1994 ई. उत्तरप्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा एक लाख का 'विश्वभारती' पुरस्कार, सम्पूर्णानंद सं. विश्वविद्यालय वाराणसी द्वारा 'महामहोपाध्याय' की उपाधि दी गई।

आपका निधन 28 जून सन् 1994 ई. को हुआ।

"वाह री धर्मनिरपेक्षता"

-देवेन्द्रनाथ वर्मा

भारत जैसे धर्मप्राण देश में 'धर्म निरपेक्षता' शब्द निश्चय ही गाली जैसा है। मनुष्य जो परमात्मा की सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी (अर्थात् अशरत-उल-मख्लूकात) है, उसकी तो बात ही क्या, उसके इतर जलचर, थलचर और नभचर प्राणियों तक का भी अपना-अपना धर्म होता है जिसका उल्लंघन वे अपनी जान पर खेलकर भी नहीं करते। उसी के अनुसार वे अपना जीवन यापन करते और सुखी रहते हैं। यदि किसी कारण अथवा परिस्थितिवश कोई व्यवधान या गतिरोध उत्पन्न हो जाये तो वे अपनी जान पर खेल कर भी उसका प्रतिकार करते हैं, और तब तक चैन से नहीं बैठते जब तक समस्या का कोई सन्तोषजनक हल न निकल आये। यही उनका धर्म है।

यदि हम जड़ जगत् को ही लें तो भी नित्य प्रति हमें यही अनुभव होता है। सूर्य का प्रतिदिन समय पर उदित और अस्त होना, चन्द्रमा की कलाओं का नित्यप्रति घटना और बढ़ना, समुद्र में ज्वार-भाटे का समय पर ही होना आदि सब ऐसे ही, उदाहरण हैं जो एक निश्चित कार्य प्रणाली को इंगित करते हैं। प्रकृति के पाँचों तत्व यथा अग्नि, जल, वायु, पृथिवी एवं आकाश का भी अपना-अपना धर्म है। अग्नि हमें गर्मी, प्रकाश और ऊर्जा देती है, जल हमें शीतलता देता है, हमारी प्यास बुझाता है, हमारे शरीर को स्वच्छ करता है। वायु हमारी श्वास-प्रश्वास प्रणाली को ठीक रखने में सहायक है जिससे हम जीवित रहते हैं। पृथिवी से हमें विभिन्न खाद्य-पदार्थ और धातुएँ प्राप्त होती हैं। ये सब न हों तो जीना दूभर हो जायेगा। आकाश यदि न होता तो हम खड़े कैसे हो पाते, वृक्ष कहाँ उगते, आकाश न होता तो विभिन्न प्रकार के पक्षी कहाँ उड़ते, हमारे वायुयान कैसे हमें कहीं ले जाते।

यदि ये सभी प्रकृति प्रदत्त तत्व अपने-अपने धर्म का परित्याग कर दें तो गहन संकट उत्पन्न हो जायेगा। वे तभी तक

उपयोगी हैं जब तक सीमाओं में रहते हुए अपना कार्य करते रहें। जब भी किसी कारणवश सीमा का उल्लंघन होता है, संकट उत्पन्न हो जाता है।

गुजरात के विनाशकारी भूकम्प की याद तो अभी ताजा है। भयंकर बाढ़ आने पर धन-जन की कैसी हानि होती है, सब जानते हैं। संसार में हम तभी सुख से रह पाते हैं जब सभी अपने-अपने धर्म का पालन ठीक प्रकार से करें। जब भी कोई व्यवधान उत्पन्न होता है तब किसी न किसी रूप में हमें संकट का सामना करना पड़ जाता है।

जितने भी मत-मतान्तर संसार में प्रचलित हैं वे सब ही आपसी स्पर्धा के कारण सारे अनर्थों की जड़ है। न चाहते हुए भी बखेड़ा खड़ा होते देर नहीं लगती। भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात् संविधान बनाये जाते समय यदि 'धर्म-निरपेक्षता' के स्थान पर पंथ अथवा 'मत-निरपेक्षता' पर ध्यान दिया गया होता तो उन सारे अनर्थों से बचा जा सकता था जिन्हें झेलने के लिये हम अभिशप्त हैं। प्रत्येक को अपने-अपने विश्वास के अनुसार रहने की स्वतंत्रता होती। किन्तु ऐसा हो नहीं सका। यही इस देश की सबसे बड़ी बिडम्बना व त्रासदी है।

यह कहना अनुचित नहीं होगा कि भारत तथा भारत के बाहर के पड़ोसी देश, यहाँ तक कि मध्य-पूर्व एशिया, पश्चिमोत्तर क्षेत्र और सुदूर उत्तरी अमेरिका जैसा सुसम्पन्न और शक्तिशाली देश भी आतंकवाद से त्रस्त और ग्रस्त है। पिछले वर्षों में 9/11 की भीषण घटना ने विश्व को झकझोर कर रख दिया था। इस त्रासदी का श्रेय अधिकांशतः इसी तथाकथित "ध र्म-निरपेक्षता" को देना अनुचित नहीं होगा। यही कारण है कि इस विचार के प्रतिपादक व्यक्ति अधिकांशतः मानवीय मूल्यों को समझ और सहेज पाने में लगभग शून्य ही होते हैं। यही कारण है कि सारा विश्व मिल कर भी इस ज्वलन्त समस्या का सन्तोषजनक हल खोज पाने में बुरी तरह असफल हो गया है। प्रश्न है बिल्ली के गले में घंटी कौन बाँधे?

'धर्म-निरपेक्षता' के विषय में कुछ कहने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि 'धर्म' क्या है और मानव जीवन में उसका क्या महत्व है। किस प्रकार वह हमें प्रभावित करता है।

'धर्म' संसार-भर में प्रचलित मत-मतान्तरों से भिन्न, देशकाल की सीमाओं से परे मानवमात्र को वास्तविक अर्थों में मानव बनाने के लिए अनिवार्य है और समान रूप से (पक्षपात रहित) अनुकरणीय है। उसके सम्बन्ध से स्पष्ट है- "ध्रियते धार्यते इति धर्मः।"

मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षणों को स्पष्ट किया गया है-

"धृतिः क्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।। -मनु. अ 6/मं 92

अर्थात् (1) धृति - सदा धैर्य रखना, (2) क्षमा - निन्दा-स्तुति, हानि-लाभ इत्यादि में भी क्षमाशील रहना, (3) दमः - मन को सदा धर्म अर्थात् कर्त्तव्य पालन आदि में प्रवृत्त रखना, अर्थात् अकरणीय कर्मों से सदा दूर रहना, (4) अस्तेय - चोरी न करना, छल-कपट, विश्वासघात अथवा वेद विरुद्ध उपदेश से पर पदार्थ का ग्रहण न करना, (5) शौच - राग - द्वेष से दूर, पक्षपात रहित भीतर (मन की) और जल इत्यादि से बाहरी अर्थात् शरीर की पवित्रता रखना, (6) इन्द्रिय निग्रहः - इन्द्रियों को (मन सहित) वश में रख कर सदा ध र्म (परोपकार आदि) में लगे रहना, (7) धीः-मादक द्रव्यों के सेवन, दुष्टों के संग, आलस्य व प्रमाद को त्याग कर श्रेष्ठ पदार्थों के सेवन सत् पुरुषों के संग और योगाभ्यास द्वारा बुद्धि को बढ़ाने के लिये सदा प्रयत्नशील रहना, (8) विद्या-पृथिवी से लेकर परमात्मा पर्यन्त यथार्थ ज्ञान के लिए सदा प्रयत्नशील रहना, (9) सत्य-अर्थात् जो पदार्थ जैसा हो उसे वैसा ही मानना, कहना और तदनुरूप आचरण भी करना, (10) अक्रोध-क्रोध को सर्वथा त्याग करके शान्ति इत्यादि सद्गुणों को ग्रहण करना।"

अतः निस्संदिग्ध रूप से कहने में कुछ भी अनुचित नहीं है कि

स्वतंत्रता प्राप्ति के अवसर पर जिस व्यक्ति ने देश की बागडोर सँभाली और विश्व के अग्रणी नेता कहलाये जाने की सनक में, धर्म के मर्म को न समझकर अथवा जान बूझकर अवहेलना करके भारत की धर्म-प्राण जनता पर 'धर्म निरपेक्षता' जैसे भ्रामक शब्द को बरबस थोप दिया। उसकी इस भूल ने कालान्तर में कैसा गजब ढाया उसे भारत की भावी पीढ़ियाँ भूलकर भी क्षमा नहीं कर पायेंगी।

सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी समझता है कि 'धर्म' क्या है। वह एक सार्वभौमिक और सार्वकालिक तत्व है जो सृष्टि के आदि से अन्त तक सदा एक-सा रहता है, जो प्रारम्भ में था, आज भी है और अन्त तक रहेगा। वह धर्म ही क्या जो बदल जाये। मत-मतान्तरों में तो परिवर्तन सम्भव हो सकता है जो उनके अनुयायियों की भौगोलिक, सामाजिक अथवा तात्कालिक आवश्यकताओं के अनुरूप हो सकता अथवा किया जा सकता है।

उस अग्रणी स्वयंभू व्यक्ति ने यदि 'धर्म' के स्वरूप को समझा होता तो यह अनर्थ कभी न होता। प्रमुख कारण है कि उसकी शिक्षा-दीक्षा, लालन-पालन अंग्रेजी वातावरण में हुआ। निश्चित ही उसकी मानसिकता उसी के अनुरूप विकसित हुई जिससे उसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध था - "A Perfect Englishman born in India" अर्थात् वह पूर्णतया अंग्रेज व्यक्ति था जो भारत में जन्मा।" अतः उसके स्वभाव में वे सारे ही गुण (अथवा दुर्गुण) विकसित हुए जो तत्कालीन अंग्रेज शासकों में पाये जाते थे। यही प्रमुख कारण था जिससे धर्म और विभिन्न मत-मतान्तरों को न समझते हुए भारत के संविधान में 'धर्म निरपेक्षता" जैसे अनर्थकारी शब्द को बलात् प्रयुक्त करा दिया और सदा सर्वदा के लिए कलह और उन्माद का बीज बो दिया।

दुर्भाग्यवश बहुमत हिन्दू (अर्थात् वैदिक) मतावलम्बियों का ही रहा किन्तु गन्दी राजनीतिक आकांक्षाओं के कारण अपना वोट बैंक पक्का करने के उद्देश्य से अन्य मतावलम्बियों की अपेक्षा वर्ग विशेष के तुष्टीकरण की नीति को जानबूझ कर

अपनाया गया। इसका सीधा और स्पष्ट अर्थ निकला कि हिन्दू होना एक अभिशाप बनकर रह गया। इस तुष्टीकरण की नीति का ही प्रभाव यह हुआ कि इस विशाल देश के तीन-तीन टुकड़े हो गए।

देश के इस अस्वाभाविक विभाजन के परिणामस्वरूप, जब 15 अगस्त, 1947 को दिल्ली में आजादी का जश्न मनाया जा रहा था, बंगाल के पूर्वी क्षेत्र में जो भाग पूर्वी पाकिस्तान में गया और पश्चिम में पंजाब का जो भाग पश्चिमी पाकिस्तान में गया, आबादी की अदला-बदली के कारण, वहाँ से आने वाले शरणार्थियों की कैसी भीषण मारकाट मची, कितनी महिलाओं और अबोध बच्चों पर जैसे अमानवीय अत्याचार धर्म और मजहब के नाम पर किये गये, लुटे-पिटे लोग जो शरणार्थियों के रूप में यहाँ कैम्पों में रहे उनके मुँह से, उस त्रासदी को सुनकर ही रोंगटे खड़े हो जाते थे। जो वर्णनातीत है। जिन्होंने स्वयं झेला उनका तो कहना ही क्या? यह सब कुछ हुआ मात्र एक शब्द "धर्म-निरपेक्षता" के कारण।

आज भी वोट के लिए तुष्टीकरण की नीति जानबूझकर जारी रखी जा रही है। "धर्म-निरपेक्षता" का एक मजेदार और घिनौना पहलू यह है कि "रोजा इफ्तार" की दावतें बड़े-बड़े नेताओं की कोठियों पर बड़े शोर-शराबे और दिखावे के साथ आयोजित की जाती हैं। उनके मदरसों पर अनाप-शनाप रुपया पानी की तरह बहाया जाता है। हज पर जाने के लिए सब्सिडी दी जाती है। यह सारा भार भारत के करदाताओं के अतिरिक्त और किस पर पड़ता है किसे नहीं मालूम। घोर निराशा और त्रासदीपूर्ण पहलू यह है किसी ने हिन्दुओं के बारे में कभी कुछ नहीं सोचा। अभी तक सरकार की दयानतदारी का कोई उदाहरण देखने में नहीं आया, जब निष्पक्ष रीति से कुछ सोचा गया हो। अमरनाथ यात्रा की कठिनाइयाँ तो हाल की ही घटना है।

"धर्म-निरपेक्षता" के इन अलमबरदारों से कोई पूछने का साहस करे भी तो कैसे, जो सबके सब अपना उल्लू सीधा करने के लिये मन्दिरों, मठों, मस्जिदों, गिरजों, गुरुद्वारों आदि में सन्तों, महन्तों, ग्रन्थियों, धर्माचार्यों, शंकराचार्यों आदि की पाद-प्रदक्षिणा करने, उनसे आशीर्वाद स्वरूप, शाल, दुशाले ओढ़ने, सरोपा आदि पहनने, पगड़ी बँधवाने किस प्रकार खुशी से जाते हैं। मतलब एक दम साफ है। वह यह कि हर तरह के हथकण्डे अपना कर इनका उल्लू सीधा होना ही चाहिए। धर्म-कर्म से न इन्हें मतलब है, न अल्पसंख्यकों से न बहुसंख्यकों से। इनका एकमात्र ध्येय है मरते दम तक कुर्सी से चिपके रहना। जनहित के नाम पर जितने कार्यों के लिए ठेके दिये जाते हैं उन सबमें एक निश्चित रकम कमीशन के रूप में, गुर्गों के माध्यम से पहले ही इनके पास पहुँच जाती है। सरकारी अनुदान राशि में हेराफेरी किससे छिपी है। यही सब कुछ इनकी जनसेवा या देश सेवा है और ये जनता के सच्चे सेवक हैं। नागनाथ हों या साँपनाथ इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। सब कुछ देख कर तो लगता है कि स्वातन्त्र्य वीरों ने अपना बलिदान क्या इसीलिये दिया था। भारत के आम नागरिक के लिये तो लगता है कि परमात्मा भी कहीं खोह में जाकर गहरी नींद सो गया है। उसकी नींद कब खुलेगी कोई नहीं जानता। आम नागरिक बेचारा यही सब देखने और झेलने के लिए विवश है। जोर से बोलो 'धर्म निरपेक्षता' भवानी की जय!

ईदगाह कालोनी, आगरा (उ.प्र.)

Quotes of Subhash

- It is our duty to pay for our liberty with our own blood. The freedom that we shall win through our sacrifice and exertions, we shall be able to preserve with our own strength.
- No real change in history has ever been achieved by discussions.
- We should have but one desire today ? the desire to die so that India may live ? the desire to face a martyr's death, so that the path to freedom may be paved with the martyr's blood.

महाराणाप्रताप और छत्रपति शिवाजी

-मनुदेव अभय

भारत का अर्वाचीन मध्य युग, इतिहास- खंड अनेकों विवादों से भरा हुआ है। यह काल खण्ड विदेशी लुटेरे, आतंकवादी तथा हिंसक मोहम्मद गौरी, से लेकर मुस्लिम प्रशासन के

अंतिम कालखण्ड बहादुर शाह जफ़र तक माना जाता है। इस 750 वर्ष की लम्बी अवधि में अकबर (जलालुद्दीन) ही एक ऐसा बादशाह है, जिसने अपने, परायों तथा स्वयं को धोखे में रखकर इस देश को बहुत क्षति पहुँचाई है। इसी प्रकार छत्रपति शिवाजी ने औरंगजेब सरीखे धूर्त, अफजल खाँ की तरह विश्वासघाती आदि को अपने गुरु समर्थ रामदास की शिक्षाओं से प्रेरित होकर उनके छक्के छुड़ा दिये। भारतीय इतिहास के ये दोनों नक्षत्र महाराणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी सदैव ही अपने तेजस्वी रूप में चमकते रहेंगे।

भारत के इस आर्वाचीन-काल को विदेशी आक्रमणकारियों का काल कहना अधिक उचित होगा। विदेशी आक्रमणकारियों से संघर्ष के काल में महाराणा प्रताप और शिवाजी ऐसे महापुरुष हुए, जिन्होंने राष्ट्र के गौरव तथा स्वाभिमान को पुनः प्रतिष्ठित कर देश, धर्म और संस्कृति का रक्षण किया। दोनों महापुरुष संयोग से सूर्यवंशी सिसोदिया कुल के ही थे। महाराणा प्रताप प्रारम्भ थे तो छत्रपति शिवाजी उस प्रक्रिया के अन्त। स्वाधीनता का जो महायज्ञ महाराणा प्रताप ने शुरु किया, उसमें पूर्णाहुति शिवाजी ने दी। दोनों के व्यक्तित्व और कर्तव्य में अद्भुत साम्य दिखाई देता है। इतिहास के पृष्ठ इन दोनों की विविध साम्यताओं से भरे पड़े हैं। सम्प्रत्ति, इस स्वतंत्र राष्ट्र में महाराणा प्रताप और वीर छत्रपति शिवाजी अधिकाधिक

प्रासंगिक हैं। नई पीढ़ी को इनसे सतत प्रेरणा लेने की आवश्यकता है।

शिवाजी की कर्मस्थली सह्याद्रि की पर्वत मालाएँ थीं। उसी प्रकार प्रताप की कर्मस्थली अरावली की पर्वत-श्रंखलाएँ थीं। दोनों ही महापुरुषों ने इन पहाड़ियों का सुरक्षा व आक्रमण के लिए प्रभावी उपयोग किया। शिवाजी तो जन्म से ही अपने पिता से दूर थे, प्रताप को भी किशोर होते ही महाराणा उदयसिंह ने चित्तौड़ की तलहटी के गाँवों में रहने के लिए भेज दिया। अपने पूर्वज मर्यादा पुरुषोत्तम राम की तरह वनवासियों को वे राष्ट्र की मुख्य धारा में ले आये। राम ने वनों में रहने वाली वानर, ऋक्ष आदि मानवजातियों को संगठित कर एक ऐसी शक्ति का निर्माण किया, जो आसुरी ताकतों को पराजित करने में सफल हो सकी। ठीक, उसी प्रकार प्रताप ने भीलों तथा वनवासियों को और शिवाजी ने मावलों को स्वातंत्र्य-योद्धा बना दिया। धूर्त और विदेशी ईसाई मिशनरी, इनकी अशिक्षा, अज्ञानता, निर्धनता से अनुचित लाभ उठाकर शिक्षा, लालच-प्रलोभन, चिकित्सा, कृषि के नाम पर इनके मतान्तरण में लगे हैं। यदि इन धूर्त ईसाई मिशनरियों को देश-निकाला नहीं दिया गया, तो हमारी अवशिष्ट राष्ट्रीय अखण्डता तथा सम्प्रभुता कभी भी खतरे में पड़ सकती है। इन दोनों महापुरुषों ने वनवासी, गिरिवासी तथा ग्रामीणों को संगठित करने में विलक्षण कुशलता का परिचय दिया।

जहाँ तक साधनों का प्रश्न है, शिवाजी के पास तो पूना की एक छोटी सी जागीर थी तथा प्रताप के मेवाड़ में भी उनके राज्यारोहण के समय सिर्फ 6300 वर्ग मील का क्षेत्र था। दूसरी ओर अपनी धन-सम्पदा और साधनों से सम्पन्न अकबर था। अर्थात् चारों ओर मुगल साम्राज्य और बीच में छोटा- सा मेवाड़। शिवाजी को तो कई दुश्मनों से एक साथ टक्कर लेनी पड़ी। औरंगजेब, बीजापुर की आदिलशाही, निजामशाही, कुतुबशाही आदि सभी उनके विनाश के लिए कमर कसे हुए थे।

इन दोनों महापुरुषों ने अनेक तेजस्वी लोगों का निर्माण किया। तानाजी मालसुर, बाजीपुर देशपाण्डे, मुरार बाजी, फिरांगोजी नरसाला हम्बीर राव मोहिते, आनन्द राव आदि अपनी ध्येयनिष्ठा, पराक्रम और सर्वस्व-समर्पण भाव के कारण अमर हो गये। जिन हिन्दुओं को मुसलमानों ने मुसलमान बना लिया था, वीर शिवाजी ने सामाजिक समरसता बनाये रखने के लिए उन्हें पुनः हिन्दू धर्म में सम्मिलित कर मुल्ला-मौलवियों को चुनौती दे दी। इसी तरह झाला मानसिंह, रामशाह तंवर राठौर, रामदास, कृष्ण जी चूडावत, भाण सेनगरा भी अमर हो गये। कहते हैं, शिवाजी के मावले वीर कई-कई घंटों तक घोंड़ों की पीठ पर बैठे-बैठे ही भोजन करते थे। प्रताप के सैनिकों की विशेषताओं के लिए डॉ. देवीलाल पालीवाल ने बिल्कुल ठीक लिखा है- "उनका साधारण भोजन प्रायः वे कपड़े में लपेटकर कमर पर बाँधकर रखते थे, जिससे तेजी से एक स्थान से दूसरे स्थान के लिए प्रस्थान करने में सरलता रहती थी।" यह था महाराणा प्रताप के सैनिकों का त्यागा। वे भोजन के लिए नहीं अपितु मात्र जीवित रहने के लिए भोजन कर युद्ध में पुनः रत हो जाते थे।

दोनों महापुरुष अजेय योद्धा तथा अद्वितीय सेनापति थे। सीमित साधनों तथा अल्प सैन्य-बल से युद्धों में जैसी सफलताएँ प्रताप और शिवाजी ने प्राप्त कीं वैसे उदाहरण अन्यत्र नहीं मिलते। कोई सीजर इन बीरों के सामने नहीं ठहरता। जो आदर्शवाद इन दोनों महावीरों ने अपनी सेना में उत्पन्न किया, वैसे भाव पश्चिमी जगत् के ये सेनानायक कभी उत्पन्न नहीं कर सके। प्रताप और शिवाजी दोनों वास्तविक अर्थों में जननायक थे। जन-जन की अगाध श्रद्धा इन्हें मिली। आज भी ये दोनों महापुरुष हम सभी भारतीयों के प्रेरणादायी हैं। दोनों ही जन-नायकों ने छापामार युद्ध-प्रणाली को अपनी युद्ध-नीति का आधार बनाया। राजनीति के क्षेत्र में दोनों श्री कृष्ण के अनुयायी थे। शिवाजी तो कूटनीति के महारथी थे। यहाँ तक

कि शत्रुओं में भ्रम पैदा करना, उनमें ही संघर्ष करा देना, शत्रुओं की गुप्त योजनाओं का पता कर लेना, उनके बाएँ हाथ का खेल था। इस संदर्भ में, प्रताप ने तो अनेकों बार कूटनीति का खेल खेला। एक ओर अकबर को संधिवार्ता में उलझा दिया तो दूसरी ओर अकबर का साथ देने वाले हिन्दू राजाओं को अपनी ओर करने में उन्होंने बुद्धि-चातुर्य का प्रयोग किया। यद्यपि धूर्त अकबर ने प्रताप के संगठन को छिन्न-भिन्न करने का बहुतेरा प्रयास किया, परंतु उसे निराशा ही हाथ लगी। इसका एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा कि जब अकबर ने मेवाड़ के राव चन्द्रसेन को मुगलों के विरुद्ध खड़ा कर दिया। प्रताप की कूटनीति के कारण ही मानसिंह तथा उसके सहयोगी मन ही मन मेवाड़ के समर्थक हो गये। यही कारण था कि अकबर ने मानसिंह को जहर देकर मरवाने की कोशिश की। (देखिए-कर्नल टॉड-उदयपुर राज्य का इतिहास खंड द्वितीय अध्याय 11 पृष्ठ 361) प्रताप की कूटनीति कार्यवाहियों से भयक्रान्त होकर अकबर कई बार नींद में चौंक कर उठ बैठता था।

ध्यातव्य है कि उन दिनों समाज में दिल्ली का बादशाह अकबर ही संसार का मालिक है" यह भय व्याप्त हो गया था। प्रताप ने इस सामाजिक मनोदशा को निकाल कर राष्ट्र जीवन में पुनः साहस व उत्साह उत्पन्न किया। यही हीनता की भावना शिवाजी के काल में भी जनमानस में गहराई से बैठ गई थी। वीर छत्रपति शिवाजी ने न केवल इस हताशा को दूर किया बल्कि 'हिन्दू-पद-पादशाही' को स्थापित कर मुगलों की सत्ता को ही जर्जर कर दिया। यही कारण है कि इन दोनों वीरों का मनोविश्लेषण करते हुए डॉ. त्यागी ने क्या खूब लिखा है- "ऐसे अलौकिक कार्य करने वाले प्रताप और शिवाजी मन से विरागी थे। अहा! प्रताप तो स्वयं को एकलिंग नाथ (महादेव) का 'दीवान' भर मानते थे। छत्रपति वीर शिवाजी ने भी राज्य को कभी अपना नहीं माना। ईश्वरीय कार्य समझकर ही उन्होंने

'स्वराज्य' के एक सेवक की तरह शासन कार्य संभाला। पूज्य माता अहिल्या बाई ने भी होल्कर वंश के राज्य को भगवान 'शिव' को समर्पित कर मात्र एक राधिका के रूप में 'इदम् न मम" कहकर राज्य का संचालन किया। संसार के इतिहास में वीर-विरागी भारत में उत्पन्न हुए हैं और भविष्य में होते रहेंगे। वीर प्रताप और छत्रपति शिवाजी ये दोनों ही आर्यत्व (हिन्दुत्व) के मूर्तिमान-स्वरूप तथा वैदिक (हिन्दू) संस्कृति की उज्ज्वल परम्पराओं के वाहक थे। एक बार महर्षि दयानन्द ने एक सभा में कुरान-शरीफ की बहुत अलोचना की और सिद्ध किया कि धार्मिक तथा सामाजिक अशांति फैलाने वाली कुरान की कुछ आयतें हैं। इस पर क्रुद्ध होकर एक मुसलमान तहसीलदार ने खड़े होकर कहा - "स्वामी जी यह मुसलमानों का राज्य होता तो मैं आपको तोप से उड़वा देता।" शान्त और गम्भीर भाव रखते हुए महर्षि दयानन्द ने तत्काल उत्तर दिया- "तो मैं भी 2-4 राजपूत वीरों की पीठें थपथपा देता और फिर क्या परिणाम होता, यह तो आप समझ गये होंगे" महर्षि का यह करारा उत्तर सुनकर वह मुसलमान तहसीलदार झेंप कर सभा से बाहर चला गया।

मुगल जिन दिनों हिन्दू मन्दिरों को तोड़कर, धर्म-ग्रंथों को आग में झोंक रहे थे, हिन्दुओं को मुसलमान बना रहे थे, आर्य हिन्दू नारियों का शील भंग कर रहे थे, उस समय उन दोनों वीरों ने आर्य-संस्कृति के अनुसार जो शानदार उदाहरण प्रयुक्त किये, वे युरोप या पश्चिमी जगत् के वीरों में कहीं नहीं पाए जाते यह इतिहास प्रसिद्ध है कि उन्हीं दिनों चरित्र के धनी महाराणा प्रताप ने मिर्जा खानखाना की बेगम (पत्नी) को भाभी शब्द से संबोधित कर ससम्मान उनके पति की बैरक में भिजवा दिया था। इसी प्रकार शिवाजी शहजादे की सुन्दर पत्नी को अपनी मानसपुत्री मानकर तथा सिपाहियों की भूल के प्रति क्षमा माँगते हुए उस बेगम को वापस सुरक्षित-हालत

में उसके पति को सुपुर्द कर दिया था। इतना ही नहीं, उस सुन्दर युवती को देखकर वीर शिवाजी ने यही कहा था-"काश! इतनी सुन्दर मेरी माता होती तो मैं कितना सुन्दर होता।" यह था छत्रपति शिवाजी का शानदान चरित्र।

कर्नल टॉड के शब्दों में "प्रताप ने विदेशी आक्रान्ताओं की जड़ों पर प्रहार करना प्रारम्भ किया था, इसमें उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई" एक इतिहासकार ने शिवाजी की प्रतिभा का मूल्यांकन करते हुए क्या खूब लिखा है-

"शिवाजी ने विदेशी आक्रान्ताओं को जड़-मूल से उखाड़कर अपने पूर्वजों के जीवनोद्देश्य को पूरा किया।"

प्रातः स्मरणीय परम पिता परमेश्वर के पश्चात् देश के वीरद्वय- प्रताप और शिवाजी को शत-शत प्रणाम!

अ/13, सुदामा नगर, इन्दौर-852007

Word Of Wisdom

- Ekam Sat Vipraha bahudha vadanti
- There is but one God, learned scholars call this God by different names
- Isha vasya midam sarvam
- The entire universe is pervaded by God
- Sarve amritasya putrah
- We are all the children of God
- Ati Vinayam Dhoortha Lakshanam
- Too much of humbleness is an attribute of a wicked person
- Aham Brahmasmi
- am God (indicating God lives inside humans)
- Lobhaha Papasya Karanam
- Greed is the root cause of sin
- Matru Devo Bhava Pitru Devo Bhava
- Acharya Devo Bhava Athithi Devo Bhava
- Treat your Mother, Father, Teacher and Guest like a God

COLLISION OF EGOS

-Pandit Rajmani Tigunait

We cannot be successful in either the external world or the internal world while we are tossed about by a powerful ego. What is required is a strong will.

The difference between ego and will is that the ego is blind but the will has vision. Will has its source in the pure Self. Ego springs from a false sense of identification with the external world, and is usually concerned with preserving self-image and self-identify. Ego is characterised by stubbornness, selfishness and unwillingness to compromise.

The ego is like a little pool. An egotistical person is like a frog crouching in that little pool-his world is small, his borders insecure. He has only a vague awareness of the trees encircling the pool, and he cannot begin to imagine the frog-filled marshes just beyond. From his perspective, beyond. From his perspective, only his own feelings and his own voice are meaningful.

The power of will, by contrast, is like a spring whose source is the Pure Being. It infuses mind and body with enthusiasm, courage, curiosity, and energy to act. In spiritual literature this force-the intrinsic power of the soul-is called ichcha shakti (will power) and it is from this force that all aspects of our personality, including the ego, derive energy to carry out their activities.

A strong personality exhibits tolerance and endurance. it has the power to vanquish and punish an opponent, but chooses to forgive and forget instead. When we are egotistical, on the other hand, we demonstrate our weakness by answering pebble with cannon. We lose our composure the moment our feelings are even slightly bruised. We have

a hard time forgetting the injuries we have received from others, but an even harder time remembering how much we have injured others.

All problems- at home, work, in politics, everywhere-are caused by colliding egos. These problems are not overcome by one ego dominating others, but by a person of strong will and clear vision coming forward and overshadowing the trivial egos of those who are quarrelling.

A strong ego is as much of an obstacle in spiritual practice as it is in worldly matters. The stronger the ego, the bigger the hurdle it will create. However, the solution is not to kill or weaken the ego but to do our best to purify, transform, and guide it properly. We can do this by employing both our intelligence and power of discrimination. When we meditate, practise contemplation, pray, study the scriptures, serve others, and seek the company of the wise we make our ego pure and less confined, and this in turn inspires us to move one step forward. Thus the ego becomes the tool for purifying and expanding itself, and in this way the petty ego is gradually transformed into an expanded, more purified ego.

This transformation must end with the ego dissolving and becoming one with the pure self and experiencing its union with Universal Consciousness. As the ego of a dedicated seeker merges with the Infinite, all confusion disappears, the veil of duality lifts, and the purified ego sees the whole universe in itself and itself in the whole universe.

SUBHAS THE IMMORTAL

-Pattabhi Sitaramayya

Today's politics is tomorrow's history. That is but a truism. But events happen in life which being the politics of the day, constitute the history of the day as well. Such is the flight of Subhas Babu beyond the borders of India across the fastnesses of Kabul to unknown regions for achieving unsuspected purposes. Whosoever thought that this silent sphinx of the Congress who stood mute and voiceless for a year of his tenure of office, would suddenly develop into a strategist, a warrior, a commander of forces, a rebel, and revolutionary in other than the softer meanings of the terms, and at last a mystery man whose whereabouts are unknown, who nevertheless is today adored as the hero in hiding and was yesterday worshipped as the martyr that was no more.

Greatness never advertises itself until it inevitably comes into the limelight of its own self-luminosity. Reflected light cannot be independent. They are planetary in character but the innate, self-born brightness of the stars emit their scintillations in their own time and lit the skies and the earth even from those astronomical distances which are not easily conceivable. Even so did Subhas Babu shine from afar like a radiant orb in the blue firmament. Alike from far-off Berlin in the West and from distant Tokyo in the East, Subhas Babu broadcast his thoughts and sentiments and unfolded on the wireless his plans and campaigns week in and week out to an amazed and astounded world that now believed them all and was thrown into raptures of hope and joy, and now disbelieved and was lost in doubt and despair.

Subhas was stili a phantom and his name was still a sound when the Indian Armies under his leadership and command invaded Imphal and the eastern boundary of Manipur. Japan was in everyone's thoughts. And when the Japanese were threatening to invade Balasore and the armies on boundary marched towards Jamshedpur, it was Japan that was believed to be the mainspring and fountain-head of the mighty resources which were overwhelming the country.

But time solved all problems and riddles and resolved all doubts and difficulties. The return of the INA, the sensational trials that it led to, the wide advertisement that followed in their train, brought to light the hidden facts of this great adventure in modem history and revealed the real man in the mystic, the brave soldier in the civilian, the genuine revolutionary in the administrator. That Subhas's colleagues did not share his principles and policies could not detract for the glory of his adventure. No foreigner may be trusted to emancipate one subject country except to enslave it himself in turn. Yet the fact remained that the attempt unprecedented in character, colossal in magnitude and stupendous in achievement must be assessed at its innate worth without being discounted either by the rights and wrongs of the case or by the facts of its success or failure. The endeavour was an end in itself, apart from its potential (since become kinetic) value in disillusioning a nation in regard to its own enviable importance.

A new faith and fervour, yea a new philosophy has been generated in millions of dried-up and despairing hearts much as the showers of the monsoon would cover a fallow land with patches of green verdure. Subhas has proved to the world that Hindustan is still a land of valour and prowess, that the Indian has still in him that sense of national honour for the preservation and perpetuation of which his forefathers had shed their red blood. Subhas may be alive or dead in body, but his spirit and his name will endure long, yea forever in history, in common with the names of Alexander and Darius, of Caesar and Hannibal, of Czenkhis Khan and Temur Lane, of Harold the last of the Barons and William the Conqueror, of Cromwell and Guy Fawkes, of Kaiser and Hitler.

Some Quotes From Subhash Chandra Bose

- Give me blood and I shall give you freedom!
- As soldiers, you will always have to cherish and live up to the three ideals of faithfulness, duty and sacrifice. Soldiers who always remain faithful to their nation, who are always prepared to sacrifice their lives, are invincible. If you, too, want to be invincible, engrave these three ideals in the innermost core of your hearts.

हे अमृत पुत्र!

-डॉ. रामदेव प्रसाद सिंह 'देव'

हे अमृत पुत्र! आँखें खोलो
जय भारत गर्व सहित बोलो
घर-घर जाकर जनमानस में
गीत मानस अमृत घोलो।

तेरी अद्‌भुत है परंपरा
यह अवतारों की वसुन्धरा
तेरी महिमा को कौन कहे
तुम जगद्‌गुरु सर्वदा रहे।
हे सप्तर्षि वंशावतंस
हे रामकृष्ण हे परमहंस
हे महामहिम! तप तेज पुंज
तव रोम-रोम है वेद गूँज
ऋषि संतति का सौभाग्य अहो!
है सिवा तुम्हारे किसे कहो?

हे वीर व्रती! प्रहरी उदार
प्रेरक शाश्वत शुचि सदाचार
जागो! जागो! तन्द्रा त्यागो
धरती माता की है पुकार
मानवता का कर समुद्धार।
एकमात्र भरोसा तुम्हारा है
निर्भर तुम पर जग सारा है
सब तुम पर आस लगाए हैं
स्वागत हित पलक बिछाए हैं।

तुम निखिल लोक के नायक हो
जन-जन के भाग्य विधायक हो
तुम सत्य सनातन मूल्यों का
सर्वत्र शीघ्र उत्थान करो
वैदिक ऋत का सम्मान करो।

म्रियमाण विश्व मानवता को
सत्वर संजीवन दान करो
तेरा अभीष्ट अध्यात्म योग
न कि भोगवाद का भीम रोग
हे भूमि पुत्र! तुम भोगी ज्यों
यूँ चौराहे पर मत डोलो।

निज गुरु गौरव को मत भूलो
भौतिक झूले में मत झूलो
हे अमृत पुत्र! आँखें खोलो
जय भारत गर्व सहित बोलो।

RNI Reg. No. DELBIL/2007/22062 Postal Regd. No. DL(W) 10/2143/2011-2013

दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।। (यजु. 36/18)

ऋषि – दध्यङाथर्वणः, देवता–ईश्वर, छन्द–जगती

अर्थ– (दृते) हे दुष्ट स्वभावनाशक प्रभो! (मा दृंह) मुझे बढ़ा, उन्नत कर। (सर्वाणि भूतानि) सब प्राणी मुझे (मित्रस्य चक्षुषा) मित्र की दृष्टि से (समीक्षान्ताम्) देखें अर्थात् सब मेरे मित्र हो जाएँ। (मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे) हे प्रभो! मैं भी बिना किसी वैरभाव के चराचर जगत् को मित्र की दृष्टि से प्रिय जानूँ अर्थात् पक्षपात रहित होकर सभी प्राणी परस्पर अन्यन्त प्रेम से व्यवहार करें। यही हमें परमात्मा का उपदेश है।

Oh Almighty God lift up my soul senses etc. from sins and permanently establish me firmly in most valuable assests namely, right knowledge, truthfulness etc. Oh Most Magestic God Vouchsafe me pious living, wordly riches, fulfilment of great aspirations and foretaste of final emanciption. Oh friend of all, You are immanent in all beings. May all look me with the eye of a friend. Oh God may I look upon all with the eye of a friend. May we give up all prejudices and behave with each other with brotherly love.

Printed by - Friendsprintofast, New Delhi-58